हिन्दी के कालजयी उपन्यास

संपादक
डॉ० ओमप्रकाश त्रिपाठी

विद्या प्रकाशन
सी, 449, गुजैनी, कानपुर – 22

मूल्य - चार सौ रुपये मात्र

पुस्तक	:	हिन्दी के कालजयी उपन्यास
संपादक	:	डॉ० ओमप्रकाश त्रिपाठी
प्रकाशक	:	**विद्या प्रकाशन** सी-449, गुजैनी, कानपुर - 22 दूरभाष : (0512) 2285003 मोबा० : 09415133173
संस्करण	:	प्रथम, 2013
शब्द सज्जा	:	रिचा ग्राफिक्स, नौबस्ता, कानपुर
मुद्रक	:	श्री पूजा आफसेट, नौबस्ता, कानपुर
जिल्दसाज	:	तबारक अली
मूल्य	:	400/-
ISBN	:	978-93-81555-21-7

HINDI KE KALJAYEE UPANYAS

Ed. By- Dr. Om Prakash Tripathi

Price : Four hundred only

9

सूखा बरगद : हिन्दू-मुस्लिम सोच का जीवन्त दस्तावेज

- डॉ० इशरत खान

अँग्रेजी 'क्लासिक' के लिए हिन्दी में 'कालजयी' शब्द का प्रयोग किया गया है। जबकि क्लासिक का अर्थ, महान् एवं श्रेष्ठ रचना के लिए ही होता हे। कालजयी शब्द का अर्थ हुआ-काल को जीतना अर्थात् जो कृति अपनी समय-सीमा को तोड़कर सार्वकालिक हो जाती है। उसे कालजयी कृति कह सकते हैं।

हालाँकि प्रेमचंद के जमाने से ही मुस्लिम समाज का यथार्थ हिन्दी उपन्यास के कथ्य का हिस्सा बनता रहा है लेकिन यह सही है कि मुश्लिम समाज के संघर्ष, अंतर्विरोध, सदाशयता और भटकाव को प्रामाणिक रूप से गुलेर खा शानी, राही मासूम, रज़ा अब्दुल बिस्मिल्लाह, मेहरून्निसा परवेज़ नासिरा शर्मा, बदीउज्जमा, असगर वजाहत और मंजूर एहतेशाम आदि की रचनाओं में उभारा गया है।

मंजूर एहतेशाम का चर्चित उपन्यास 'सूखा बरगद' 1986[1] में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में अपने समय के तीखे प्रश्नों से साक्षात्कार किया गया है। इसमें स्वातंत्र्योत्तर मध्यवर्गीय मुस्लिम-समाज की मानसिकता, धर्म के कारण व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों में दरार आना आदि समस्याओं पर लेखक ने गहरी संवेदनशीलता और तार्किकता के साथ विचार किया है।

उपन्यासकार ने 'सूखा बरगद' में आजादी के बाद से लेकर आठवें दशक तक के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। मुस्लिम जीवन के यथार्थ और उसकी सोच को वह बहुत गहराई और प्रामाणिकता के साथ चित्रित करने में सफल हुए हैं। हालाँकि आधुनिकता के साथ ही साथ मुस्लिम जीवन में भी परिवर्तन आया लेकिन आज भी वह धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों एवं परंपराओं का दास बना हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में मुस्लिम समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसको दीनी तालीम देने वाली फफू के माध्यम से दर्शाया गया है और इसका समाधान भी सुहेल नामक पात्र से करवाया गया है। इस्लाम धर्म में फोटो खिंचवाना, बनवाना या रखना गुनाह है। फफू कुरान पढ़ने आए मासूम बच्चों से कहती हैं-

"यब सब गुनाह है चाहे तस्वीर बनाये या खिंचवायें और इनका घर जहन्नुम

है।''[2] लेकिन तस्वीर सम्बन्धी यह धारणा समय के साथ ही शिथिल पड़ जाती है। हज यात्रा बिना पासपोर्ट के हो नहीं सकती और पासपोर्ट के लिए फोटो खिंचवाना जरूरी है। हज यात्रा के इच्छुक किसी व्यक्ति का फोटो को लेकर आपत्ति न करना जाहिर करता है कि फोटो और जहन्नुम का रिश्ता एक बनी बनाई रूढ़ि ही तो है इस सिलसले में सुहेल का भोलेपन से पूछा गया सवाल, रूढ़ि की निरर्थकता की पुष्टि करता है- ''आप भी हज करने जाएँगी तो क्या फोटो खिंचवाना पड़ेगी? क्या नन्हे बच्चे पर भी गुनाह होगा, फोटो खिंचवाने का।''[3] औरतों के मस्जिद में जाने की मनाही, दुआ-ताबीज, टोटके करना आदि रूढ़ियों का उल्लेख भी उपन्यास में किया गया है। ये रूढ़ियाँ इस्लाम धर्म में ही नहीं बल्कि अन्य धर्मों में भी फैली हैं।

इसी प्रकार भारत में रहने वाले मुसलमानों में व्याप्त असुरक्षा एवं भय को भी दर्शाया गया है। इन भावनाओं को बढ़ावा देनेवाले, कारणों को भी उजागर किया गया है। प्राय: आज भी मुसलमान इस बात से आतंकित रहते हैं कि उन्हें बहुसंख्यक समाज द्वारा, पाकिस्तान बनाने के लिए ज़िम्मेदार माना जाएगा और अपमानित किया जाएगा। रही-सही कसर दंगे ही पूरी कर देते हैं। इसके अलावा पाकिस्तान के साथ भारत का तनाव और संघर्ष भी, असुरक्षा के कारणों में से एक है। जब कहीं आतंकवादी हमला होता है या पाकिस्तान से युद्ध होता है, इस समय सभी मुस्लिम शक के दायरे में आ जाता हैं। इस सन्दर्भ में रशीदा का कथन उल्लेखनीय है-

''क्या यह हमदर्दी उन लोगों से बदला लेने को तो नहीं थी जो हमें कनखियों से देखते हैं और हमारे आते ही बात का टॉपिक बदल देते हैं जैसे कोई उनकी अपनी राज़ की बात हो और हमारे जान लेने से बड़ा नुकसान हो जाएगा। हम जासूस हैं ना पाकिस्तान के।''[4]

देशविभाजन के पश्चात मनुष्य मानवता को खोकर, धर्म की संकीर्ण श्रृंखला से जुड़ गया था। 'सूखा बरगद' उपन्यास में इसी साम्प्रदायिक समस्या को व्यापक रूप से उभारा गया है। आज भी भारत में यह ज्वलंत समस्या बनी हुई है। गुजरात, मुंबई, भोपाल, कलकत्ता और अलीगढ़ आदि प्रान्त एवं शहर इसी समस्या से जूझ रहे हैं। उपन्यास में लेखक ने साम्प्रदायिक दंगों के कारणों पर विस्तार से विचार किया है।

साम्प्रदायिक दंगों का एक बड़ा कारण है- 'कुटिल राजनीति का दबाब'। आज के नेतागण सत्ता प्राप्ति के लिए, हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़वा देते हैं। असगर साहेब और रजबअली ऐसे ही नेता हैं जो एक ओर गलत अफवाहें फैलाकर दंगे करवाते हैं तो दूसरी ओर सुहेल जैसे युवाओं को गुमराह करते हैं। जो सुहेल शुरू में धार्मिक कट्टरता का विरोध करता है वही रजब-अली के संसर्ग में उतनी ही तेजी से साम्प्रदायिक बनता है। जब रजबअली जनसंघ पार्टी में शामिल हो जाते हैं तब रजबअली की राजनीति से उसका मोहभंग हो जाता है। इसी भ्रष्ट

राजनीति के कारण मुसलमानों में असुरक्षा एवं भय का भाव बना रहता है। भोपाल को राजधानी बनाए जाने पर असगर साहेब जैसों का कहना है- "शहर को राजधानी बनाया ही इसलिए गया कि धीरे-धीरे यहाँ मुसलमानों का पत्ता साफ हो जाए, हिन्दू उनके सिर पर जूते बजाएँ, इधर राजधानी बनी, उधर शहर का हिन्दू-मुस्लिम फसाद हुआ।' पंडित नेहरू मुस्लिम भाई, अन्दर ही अन्दर महासभाई और हमसे कहा जाता है हम सुअर खाएँ। क्यों खाएँ।"[5]

आजादी के बाद हिन्दू-मुसलमानों को जिस इतिहास से परिचित कराया जाता है, वह साम्प्रदायिकता की खाई को और चौड़ा करता है। मुसलमानों के लिए औरंगजेब 'आलमगीर' था और शिवाजी पहाड़ी चूहा। वस्तुतः अकबर-राणाप्रताप शिवाजी औरंगजेब के युद्ध को सामंती टकराहट न समझकर हिन्दू-मुसलमानों की लड़ाई मानना, इतिहास की गलत प्रस्तुति के कारण ही है। इसने तनाव को बढ़ाने में मदद की है।

कुछ बेहद निजी कारण भी किसी संवेदनशील मुस्लिम युवा की सोच को सम्प्रदायवादी एवं कट्टरवादी बना देते हैं। एक हिन्दू लड़की से विवाह न होने के कारण सुहेल टूटकर बिखर जाता है। वह सोचता है कि यह सब उसके सेकेंड क्लास सिटीजन होने के कारण हुआ है- "मैं चाहे जो भी सोचूँ जो भी करूँ। मुसलमान होने के नाते एक हिन्दू की बराबरी नहीं कर सकता।"[6] इसके अतिरिक्त सुहेल और विजय के संवादों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम सोच को उभारा गया है।

मुसलमानों के प्रति तरस खाने और घृणा करने का भाव सुहेल जैसे संवेदनशील युवा को बार-बार चुभता है। असगर साहेब और रजब अली जैसे लोग इस चुभन का अपने स्वार्थों के लिए दुरुपयोग करते हैं। मुसलमानों के इस स्थिति पर पहुँचने के लिए, दो प्रमुख कारण हैं एक तो हमारी व्यवस्था की कमियाँ और दूसरी ज्यादातर भारतीय मुसलमानों की अपने एक सिमटी हुई सोच जिम्मेदार है। उनके कुछ आरोप तो बेबुनियाद हैं। जब रहीम मियाँ अफीम की स्मंगलिंग में पकड़े जाते हैं। तब मुस्लिम वर्ग बेबुनियाद बातें करते हैं। जैसे- उन्हें फँसाया गया है। सब जड़ें काटने की, ठंडे दिमाग से सोची समझी साजिशें हैं।[7] अपराधी, अगर मुसलमान है तो यह कहा जाता है कि जानबूझकर उसके प्रति कार्यवाही की गई है। उपन्यासकार का कहना है कि यह सोच, संकीर्ण सोच है। धीरे-धीरे सुहेल का संकीर्ण होना इस बात का सबूत है कि इस तरह के ख्यालात आग की तरह फैलते हैं। जब इंजीनियरिंग कॉलेज के प्रो० रज़ा, कालिज से निकाले जाते हैं तो इसका कारण वह, उनका मुसलमान होना मानता है।

इस सन्दर्भ में रामविनय शर्मा का कहना है "इस साम्प्रदायिक, दृष्टिकोण के कारण आज समाज में इंसानों की संख्या लगातार कम होती जा रही है, हिन्दू-मुसलमान बढ़ते जा रहे हैं। सत्ता और धार्मिक प्रतिष्ठान दोनों मिलकर इंसान

से उनकी इंसानित छीन लेने पर आमदा है।''[8]

इसके बावजूद देश में साम्प्रदायिकता दिन पर दिन बढ़ रही है। क्या इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। यदि इसे रोटी और बेटी से जोड़ दिया जाए तो समस्या का बहुत कुछ समाधान हो सकता है। हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो तो दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के निकट आ सकते हैं। विजय से विचार-विमर्श के दौरान सुहेल कहता है- ''क्या ज़माना था, लगता था हम दोनों मिलकर मुल्क में हिन्दू-मुसलमान तारीख बदल देंगे। सोचते थे, दोनों मजहबों में आपसी शादियाँ होनी चाहिए क्योंकि इससे बीच का फासला कम होगा।'' ऐसा ही एक प्रयास उपन्यास में भी किया गया है। इसमें रशीदा-विजय और सुहेल-गीता के प्रेम-संबंधों को दर्शाया गया है लेकिन इनका प्रेम फलीभूत नहीं हो पाता है। इसके दुष्परिणाम भी उपन्यास में दिखाए गए हैं। सुहेल दिग्भ्रमित एवं दिशाहीन हो जाता है और रशीदा शादी न करने का निर्णय लेती है।

ऐसा उपन्यासकार ने क्यों किया? शायद इसका कारण यह हो सकता है कि इससे हिन्दू-मुसलमानों में आक्रोश व्याप्त हो जाता या आज की नयी पीढ़ी यह सोचती कि अभी समाज इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं है।

हिन्दू-मुसलमानों के बीच जब तक सोच की गुत्थी नहीं सुलझेगी, यह उपन्यास कालजयी रहेगा।

कालजयी रचना की पहचान भाषा से भी की जा सकती है। 'सूखा बरगद' में विषयानुकूल, प्रसंगानुकूल व पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने स्थानीय भाषा का भी प्रयोग किया है। इब्नूदादा अपनी बेटी को डाँटते हुए कहते हैं-

''काँ रैता है तेरा दिमाग? दारी बिल्कुल अपनी मयूयों पे गई है।''[9] इसके अतिरिक्त उर्दू, अरबी एवं अंग्रेजी शब्दों का सार्थक प्रयोग भी हुआ है लेकिन इसमें कहीं-कहीं उर्दू के इतने क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है कि एक सामान्य पाठक के लिए इन शब्दों का अर्थ समझना कठिन हो सकता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

नाशिस्त, हिंदसा, उसरत, तुफैल, फसील, गलबा, आसेब आदि।

क्षणजीवी साहित्यिक कृति में युगबोध और जीवनमूल्य हाशिए पर छोड़ दिए जाते हैं किन्तु कालजयी रचना में ये केन्द्र में हुआ करते हैं। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्बू (अब्दुल हमीद) के माध्यम से मानवीय मूल्यों को उभारा गया है। अब्बू नमाज, मस्जिद एवं धर्मकार्य में विश्वास नहीं रखते हैं। वे शिक्षा प्राप्त करने, धार्मिक कट्टरता का विरोध एवं मानवीय मूल्यों के प्रति लगातार संघर्ष करते हैं। उनकी दृष्टि में 'इन्सान' महत्त्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में अब्बू का कहना है- ''मैं इन्सान के अलावा किसी खुदा में विश्वास नहीं करता।''[10] अब्बू का यह कथन उच्च मानवीय

आदर्शों से प्रेरित है और लेखक इन्हीं विचारों, मूल्यों से पाठकों को परिचित कराना चाहता है। यही आदर्शवादी स्वर, उपन्यास में स्थान-स्थान पर दर्ज है। धर्म के नाम पर राजनीति करने वालों का अब्बू विरोध करते हैं। उनके विचार इस प्रकार हैं- ''बेगिनती मस्जिद और मंदिर बनवा दो, जहाँ यह आदमी, हुकूमत करने वाले के भी हाकिम की इबाबत करता रहे। ताकि बुनियादी जरूरतों से लोगों का ध्यान हटाया जा सके।''[11] धर्म की व्याख्या वे इस प्रकार करते हैं- ''मजहब मेरे लिए क्या मतलब रखता है, इसको समझने के लिए आसमानी किताबों की जरूरत नहीं, इंसान का ज़मीर काफी है।''[12]

वकील साहेब की भारतीय संस्कृति में गहरी आस्था है। लेखक ने इसको रशीदा के माध्यम से कहलवाया है- ''हमारे अब्बू ने धर्म और संस्कार में से संस्कार को चुना है।'' उनकी दृष्टि में धर्म दंगा-फसाद की जड़ से अधिक, कुछ नहीं।''

अब्बू के कथनों में आशावादी स्वर भी उभरे हैं वे नयी पीढ़ी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं- ''यह आपसी नफरत का खेल ज्यादा दिनों चलने वाला नहीं है।'' अपनी अगली पीढ़ी के प्रति भी वे आश्वस्त हैं- ''तुम लोग बेहतर ज़माने देखोगे।''[13] लेकिन यह आशावाद अभी तक हकीकत में नहीं बदल पाया है। इन मूल्यों और भारतीय संस्कृति का समर्थन करने के बावजूद एक निराशा का वातावरण सम्पूर्ण उपन्यास में छाया हुआ है। 'सूखा बरगद' उपन्यास का अन्त निराशा, दुख एवं पीड़ा के अहसास से होता है। सुहेल के प्रस्तुत कथन से उपन्यास समाप्त होता है। ''जमशेदपुर करबला बना हुआ है- मुसलमानों का मार-मार कर मास कर डाला है। वह जो एक राइटर था, हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई की थीम पर उर्दू में जिंदगी भर कहानियाँ लिखता रहा, उसे भी निपटा दिया।''

इसके अतिरिक्त 'सूखे बरगद' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। भारत से विशाल बरगद के नीचे अनेक धर्म, सम्प्रदाय, जातियों के लोग पल्लवित एवं पुष्पित होते रहे हैं लेकिन आज स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व-बोध के लिए चिन्तित, व्यथित है। आज भारत से उच्च जीवनमूल्य समाप्त हो गए हैं- सुहेल का कहना है- ''यह सूखा है-- सचमुच सारे बरगद का फैलाव-उसकी शाख-शाख, कोंपल-कोंपल जड़ों पर खड़े-खड़े ही सूख चुका है।''[14] लेकिन इस प्रतीक में उपन्यासकार का उद्देश्य भी निहित है। उपन्यासकार का कहना है कि क्या 'सूखे-बरगद' को हरा-भरा नहीं किया जा सकता है अर्थात् भारत के समान विशाल बरगद के सूखेपन को नष्ट करके पुनः हरेपन में बदलना, वर्तमान समय में कोई मुश्किल काम नहीं। इसके पश्चात ही एक नूतन भारत का वैश्विक अस्तित्व अपने आप में ही निरालापन लिए होगा।

इसके अतिरिक्त उपन्यास में रशीदा के रूप में नारी-चेतना, परवेज के

मार्क्सवादी विचारों की प्रतिध्वनि भी सुनाई देती है।

इस प्रकार 'सूखा बरगद' में उपन्यासकार में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त विशिष्ट मानसिक अन्तर्विरोध को चित्रित किया है। इसके पीछे उपन्यासकार ने, केवल तत्कालीन राजनीति को ही ज़िम्मेदार नहीं ठहराया, बल्कि तत्कालीन राजनीति को भी ज़िम्मेदार ठहराया है। मंजूर एहतेशाम ने वकील वहीद, सुहेल-रशीदा, विजय, फफू, रज़िया-परवेज आदि मुख्य पात्रों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज की विभीषिकाओं का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। जिन समस्याओं, सवालों, उलझनों का वर्तमान काल में, भारत सामना कर रहा है, उन्हीं बातों को जातीयता, क्षेत्रीयता, धर्मरूढ़ता, भाषावादिता, साम्प्रदायिकता आदि को उपन्यास की मूल संवेदना के रूप में अंकित किया है। इसी आधार पर 'सूखा बरगद' उपन्यास को कालजयी कृति कहा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. गोपालराय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ. 356
2. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृ. 17
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 81
5. वही, पृ. 55
6. वही, पृ. 119
7. वही, पृ. 89
8. राजेन्द्र यादव (सम्पादक), हंस पत्रिका जनवरी, 1999, पृ. 85
9. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृ. 24
10. वही, पृ. 55
11. वही, पृ. 60
12. वही, पृ. 59
13. वही, पृ. 71, 143, 144
14. वही, पृ. 198